रूप से मैग्मा की उत्पत्ति एवं ज्वालामुखी विस्फोट में सहसम्बन्ध है लेकिन भूगर्भ में मैग्मा का स्रोत क्या है? इस पर काफी मतभेद है। सामान्य मत यह है कि ऊपरी दबाव कम होने पर तापमान के प्रभाव में आकर चट्टानें पिघल कर मैग्मा में परिणत होती हैं। विभिन्न मतों के अनुसार भूगर्भ में मैग्मा के तीन स्रोत हैं–

(i) स्थाई राशि– कुछ भूगर्भवेत्ताओं का यह शोध निष्कर्ष है कि पृथ्वी के आन्तरिक भाग में लगभग 12 किमी० गहराई पर बैसाल्ट की परत है। बैसाल्ट की यह स्थाई परत महाद्वीपों के नीचे अधिक मोटाई में एवं महासागरों के नीचे पतली परत में है। ऊपरी दबाव के कारण यह परत ठोस या अर्ध ठोस अवस्था में रहती है। किंचित भूगर्भिक क्रियाओं से ऊपरी दबाव कम होने पर यह बैसाल्ट परत पिघल कर लावा में परिवर्तित हो जाती है एवं ऊपर की ओर विस्फोट के साथ लावा प्रवाहित होता है।**(ii) स्थानिक लावा राशि–** कुछ भूगोलवेत्ताओं के अनुसार लावा की स्थाई परत नहीं होती , अपितु स्थान–स्थान पर इसके छोटे जमाव होते हैं, जो भूपटल से समीप होते हैं। जब कभी ऊपरी धरातलीय भार कम होता है, तो यह पिघलते हुए भू–तल पर निकलता है।**(iii) बैथोलिथ लावा राशि–** जब तप्तावस्था को प्राप्त लावा आन्तरिक दरारों या खाली स्थानों में जम जाता है, तो उस जमाव को *बैथोलिथ* कहते हैं। जब यह लावा प्रवाहित होता है, तो उससे आस–पास की चट्टानें प्रभावित होती है एवं पिघलती है। जहां कहीं भी धरातल कमजोर होता है, वहां लावा ऊपर की ओर निकलने लगता है।वस्तुतः आन्तरिक भाग में चट्टानें तापक्रम के प्रभाव में आकर पिघलती है एवं लावा निर्माण होता है। जहां कहीं यह ऊपरी धरातल को कमजोर पाता है, तो ज्वालामुखी का विस्फोट होता है।

(4) जल वाष्प की उत्पत्ति– जब कभी धरातलीय जल का रिसाव कुछ अधिक मात्रा में हो जाता है, तप्त चट्टानों के प्रभाव में आकर वाष्प का निर्माण होता है। यह वाष्प निरन्तर भू–तल पर आने के लिए सचेष्ट रहती है अतः जल वाष्प की उपस्थिति भी ज्वालामुखी विस्फोट के कारणों में से एक है। ग्रेनरी महोदय ने ज्वालामुखी उदगार के लिए जल वाष्प को ही सर्वाधिक प्रभावशाली कारक माना है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ज्वालामुखी विस्फोट के लिए भूगर्भिक तापमान, लावा का ऊपर की ओर आने का प्रयास तथा गैस तथा वाष्प की आन्तरिक भाग में व्यापकता आदि ही उत्तरदायी है। भूगर्भिक तापमान के प्रभाव में आन्तरिक चट्टानें दबाव कम होने पर लावा का रूप धारण करती हैं। चूंकि यह लावा ऊपर आने के लिए तत्पर रहता है एवं गैस तथा वाष्प इसमें उत्प्रेरक होती है, परिणामतः ज्वालामुखी का विस्फोट होता है।

प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त के आधार पर ज्वालामुखी क्रिया का स्पष्टीकरण– प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त के पूर्व ज्वालामुखी क्रिया की व्याख्या बड़ी अस्पष्ट रूप में की जाती थी। सामान्यतया यह मान लिया जाता था कि जहां कहीं भू–तल में दरारें होती हैं उनके माध्यम से ऊपर से अन्दर

की ओर प्रवाहित जल भीतर के अधिक तापमान के संसर्ग से गैस में परिणत होकर, ऊपर आने को सचेष्ट होता है तथा जहां कमजोर परत मिलती है उसे तोड़कर बाहर आ जाता है। अब प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त ज्वालामुखी विस्फोट सम्बन्धी प्रक्रिया की गुत्थियों को सुलझाने में काफी सहायक हुआ है। जैसे बताया जा चुका है (अध्याय–7) भूतल 6 प्रमुख प्लेटों से बना है, जो गतिशील है। यदि प्लेटों के वितरण एवं ज्वालामुखियों को मानचित्र पर देखें तो प्लेटों के किनारों के सहारे ही ज्वालामुखी क्षेत्र हैं। लगभग 15% ज्वालामुखी तनाव (Tension) वाले क्षेत्रों एवं 80 प्रतिशत दबाव (Compression) वाले क्षेत्रों में मिलते हैं। ये तनाव एवं दबाव वाले क्षेत्र प्लेटों के किनारे वाले हैं। मात्र 5% ज्वालामुखियों का प्लेटो के आन्तरिक भाग पर उदभेदन होता है। इसका उदाहरण हवाई द्वीप है, जो प्रशान्त महासगरीय प्लेट पर स्थित है। अधिकतर ज्वालामुखियों की पेटी एवं प्लेटों के किनारे साथ–साथ मिलते हैं। प्लेटों के विपरीत दिशा में खिसकाव एवं समानान्तर टकराव के चलते उपरी दबाव कम होता है एवं मैग्मा को उपर की ओर आने के लिए अवसर मिलता है। इन प्लेट किनारों के सहारे ही ज्वालामुखी क्रियाएं होती हैं। जिन प्लेटों के किनारों के सहारे नये पदार्थों का निर्माण (प्लेट संचलन से) होता है उन्हें *रचनात्मक* किनारे (Constructive plates) एवं जिन किनारों पर इन प्लेटों का पदार्थ नीचे चला जाता है तो उन्हें *क्षयशील* (Destructive) किनारा कहते हैं। ज्वालामुखी की क्रिया इन्हीं क्षयशील एवं 'रचनात्मक किनारों' के सहारे ही घटित होती है। वस्तुतः विभिन्न प्लेट अपने प्रवाह से महाद्वीपों एवं महासागरीय भागों को स्थानान्तरित करते रहते हैं। भूतल पर मध्य महासागरीय कटकों के सहारे सक्रिय ज्वालामुखियों का वितरण मिलता है। सामान्यतया इन कटकों के सहारे प्लेट विपरीत दिशाओं में खिसकते है तथा दबाव कम होने के कारण नीचे का तप्त पदार्थ दरारी उदगार द्वारा उपर आता है। जब ज्वालामुखी प्रक्रिया इन कटकों क सहारे हो तो उसे *'महासागरीय–कटक ज्वालामुखी'* (Ocean Ridge Vulcanism) कहते हैं। इसी तरह दृढ़ भू–खण्डों यानि प्लेटों पर भी ज्वालामुखी घटनाएं होती हैं लेकिन यह प्रक्रिया कम होती है। इन्हें *'अर्न्तप्लेट–ज्वालामुखी'* (Intraplate vulcanism) कहते हैं। इसी तरह जब दो प्लेटों का प्रवाह समागम यानि आमने–सामने की दिशा में हो तो अधिक घनत्व वाला प्लेट नीचे चला जाता है तथा गहराई में जाकर पिघलता है जो मैग्मा के रूप में उपर उदभेदित होता है। फिलीपीन्स एवं मारियाना गर्त चाप इसी के उदाहरण हैं। इस तरह के उदगार को (Convergence-Zone Vulcanism) कहते हैं। *जैसन मार्गन* तथा *जे टूर्जो ब्रिल्सन* ने ज्वालामुखी केन्द्रों को स्पष्ट करने के लिए '(Hot spot concept)' *उष्ण स्थल संकल्पना* दी है। इनका अस्तित्व पृथ्वी के प्रावरण (Mantle) में होता है तथा ये 'निश्चित स्थल होते हैं। इन Hot spots की स्थिरता की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए भू–भौतिकीविद् सचेष्ट हैं।

ज्वालामुखी अभिक्रिया (Mechnism of vulcanism)– प्लेटों के विभिन्न किनारों पर होने वाले ज्वालामुखी उद्गारों से प्रकट है कि ज्वालामुखी क्रिया प्लेटों की गतिशीलता से अभिन्नतम रूप से जुड़ी है। परस्पर विलग होते प्लेटों अर्थात् रचनात्मक प्लेट किनारों को विलग करने वाला अन्तराल *एस्थेनोस्फीयर* (ऊपरी प्रावरण) तक पहुंचता है। इसी दरार से प्लवनशील मैग्मा भू–पर्पटी

तक उठ आता है जिससे नये स्थल का निर्माण होता है। जैसे–जैसे प्लेटों के अन्तराल से मैग्मा उपर उठता है उपरी दबाव (मैग्मा के हट जाने से) कम हो जाता है। परिणामस्वरूप आन्तरिक चट्टानों का पिघलाव अधिक होने लगता है जिससे बैसाल्ट (मैग्मा) की आपूर्ति बढ़ती रहती है। यही उत्प्रवाह सामुद्रिक कटक, ज्वालामुखी एवं बेसाल्टिक समुद्री सतह की निर्माण सामग्री प्रदान करता है।दूसरी ओर जहां दो प्लेट मिलते हैं और एक, दूसरे के नीचे ,धंसता है वहां एक द्वीप–चाप समुद्र सतह से निर्मित होता है जिससे बैसाल्ट एवं एण्डेसाइट (बैसाल्ट एवं रियोलाइट अर्थात रवां विहीन मैग्मा के ठण्डी होने से निर्मित चट्टान) के मध्यवर्ती होते हैं। बैसाल्ट नीचे धंसती प्लेट के उपर स्थित *एस्थेनोस्फीयर* (बाह्य प्रावरण) से प्राप्त होता है जबकि एण्डेसाइट नीचे धंसते प्लेट से लिपटे समुद्र तल के निक्षेप एवं बैसाल्ट परत के आंशिक विघटन से प्राप्त होता है। फिलीपीन तथा द्वीप–चाप इसी प्रकार प्लेट संधि स्थल (एशियाई एवं पैसिफिक प्लेट के) पर निर्मित है। *एस्थेनोस्फीयर* से प्राप्त मैग्मा यदि विना किसी समुद्र सतह से प्राप्त अवसादों के मिलावट के उपर भू–पर्पटी पर आ जाता है तो बैसाल्ट की प्रधानता द्वीप चापों पर मिलती है। परन्तु अधिक शैल मिश्रित बैसाल्ट का विस्फोट यह दर्शाता है कि नीचे धंसे हुए प्लेट पुनः पिघल कर मैग्मा बन जाते हैं।

प्लेटों के भीतरी सतह पर होने वाले ज्वालामुखी विस्फोट (जैसे हवाई द्वीप पर, जिनका प्रतिशत अत्यल्प है परन्तु जिनकी व्याख्या प्लेट विवर्तनिकी से करना कठिनहै)की व्याख्या हेतु तप्त स्थल (Hot spot) प्राक्कल्पना प्रस्तुत की गई है। इन्हें तप्त पदार्थों की धारा या उत्प्रवाह से सम्बद्ध किया जाता है। ये तप्त उत्प्रवाह मैण्टल की गहराई से निःसृत होकर, भू–पर्पटी का उदभेदन करते हुए ज्वालामुखी के रूप में फूटते हैं। ऐसे तप्त खम्भनुमा प्रवाह, प्रावरण में निश्चित स्थलों पर विद्यमान हैं, जो प्लेट के साथ गतिमान नहीं हैं। जैसे–जैसे प्लेट इनके उपर से होकर गुजरता है ये ज्वालामुखी मृत हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि सम्पूर्ण ज्वालामुखी अभिक्रिया में मैग्मा प्रवाह की विशिष्ट भूमिका है। अतएव प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मैग्मा का स्रोत कहां है?

पृथ्वी की पर्पटी का लगभग 40% बैसाल्ट निर्मित है जो मुख्यतया ज्वालामुखी क्रिया की देन है। *बैसाल्ट एस्थेनोस्फीयर का पिघला पदार्थ ही है।* प्लेटों के संधि स्थल पर जहां एक महाद्वीपिय प्लेट अगसर होता है, वहां सिलिका मैग्मा की सभी दशायें विद्यमान होती है। इनमें ताप, विरूपण (Deformation) तथा मूल पदार्थ की बहुलता शामिल है। एक अधः निक्षेपित ठण्डा सामुद्रिक प्लेट जब तिर्यक रूप से एस्थेनोफीयर में प्रवेश करता है तो यह पिघलने लगताहै। इस पिघलाव हेतु आवश्यक ऊर्जा दो स्रोतों से प्राप्त होती है।(अ) अपेक्षाकृत अधिक तप्त एस्थेनोफीयर से ताप का प्रवाह तथा (ब) अद्यः निक्षेपित प्लेट के ऊपरी सतह एवं उसके ऊपर चढ़ी हुई प्लेट की संलग्न सतह की रगड़ से उत्पन्न तापीय ऊर्जा। इस प्रकार समुद्री प्लेट की बैसालट निर्मित सतह जिसमें सिलिका का रसायनिक संयोग रहता है एण्डेसाईट(Andesite) मैग्मा में परिणत हो

जाता है। यह प्लवनशील मैग्मा ऊपर उठते हुए, ज्वालामुखी विस्फोट करता है। (चित्र 8.2)

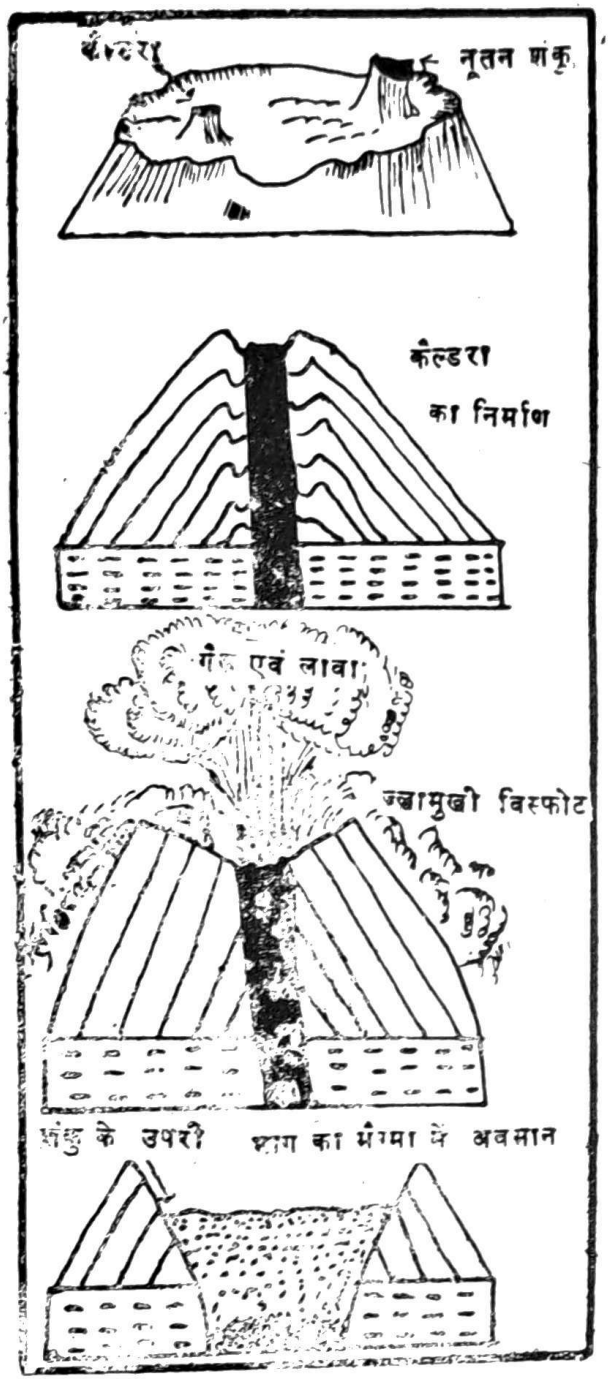

चित्र 8.2 कैलडेरा के स्वरूप

ध्यान देने की बात है कि प्लेटों के विलगाव स्थल अर्थात् प्लेटों के रचनात्मक उपान्त पर, चूंकि पर्पटी से एस्थेनोस्फीयर तक गहरी दरार मिलती है अतएव वहां मैग्मा प्रवाह निरन्तर परन्तु शान्त–दरार (Fissure) प्रवाह के रूप में होता है।इससे समुद्री सतह का प्रसार होता है, दूसरी ओर प्लेटों के संधिस्थल या क्षयात्मक किनारों पर विस्फोटक ज्वालामुखी मिलते हैं क्योंकि यहां अधः निक्षेपित सामुद्रिक प्लेट के पिघलाव से निर्मित मैग्मा में विस्फोटक गैसों का मिश्रण होता है जो बुलबुले की भांति उपर उठती हैं। परिप्रशान्त ज्वालामुखी तथा मध्य महाद्वीपीय ज्वालामुखी इसी भांति प्रकट होते हैं।

ज्वालामुखी द्वारा बनी स्थलाकृतियां

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित स्थलाकृतियां पृथ्वी के आन्तरिक तथा बाह्य दोनों हिस्सों में मिलती है। ज्वालामुखी द्वारा निर्मित आकृतियों की विविधता को देखते हुए इन्हीं आधारों पर स्थलाकृतियों को दो भागों में रखते हैं, जिनका विवरण अधोलिखित है।

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित बाह्य स्थलाकृतियां–

(1) बिवर विस्फोट द्वारा निर्मित स्थलाकृतियां– इस तरह के उदगार में लावा, गैस, वाष्प एवं बिखंडित पदार्थो द्वारा शंकु का निर्माण होता है, जो ऊंचे उठे भाग कहलाते हैं। कभी–कभी ज्वालामुखी उदगार से उदगार बिन्दु पर सतह का कुछ भाग उड़ जाता है, परिणामतः वह धरातल नीचा हो जाता है, जिसे *क्रेटर* एवं *कैल्डरा* 'शंकु' आदि कहते हैं।

(अ) ऊंचे उठे भाग– ज्वालामुखी के विस्फोट द्वारा ऊंचे उठे भागों के अर्न्तगत अधोलिखित स्थलाकृतियां आती हैं: **(i) सिन्डर शंकु–(Cinder Cone)**–का निर्माण विखंडित सामग्रियों से होता है तथा इसकी उंचाई अपेक्षाकृत कम होती है। प्रारम्भ में इसका आकार सीमित होता है, परन्तु

क्रमशः इस पर जमाव चढ़ता जाता है। इसके निर्माण में द्रव पदार्थों का योगदान नहीं रहता। मैक्सिको में *'पेरीकुटीन'* ज्वालामुखी, जिसका उदगार 1943 में हुआ था, इसका उदाहरण है, जिसकी छः दिनों की सक्रियता में ऊंचाई 150 मीटर हुई।**(ii) कम्पोजिट या मिश्रित शंकु**– विशाल महाद्वीपीय ज्वालामुखी प्रायः *कम्पोजिट शंकु* का ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जैसे *फ्यूजीयामा, एटना, विशुवियस, स्ट्राम्बोली* आदि। चूंकि इसमें पदार्थों का जमाव परतों के रूप में होता है, इसीलिए इसे Strato Volcano भी कहते हैं। ये शंकु सर्वाधिक ऊंचे होते हैं।**(iii) परजीवी शंकु (Parasite Cone)**–यदि ज्वालामुखी का केन्द्रीय भाग बहुत ऊंचा उठ जाता है, या बन्द हो जाता है, तो कई सहायक छिद्रों द्वारा उदगार होने लगता है। *एटना* तथा *मोनालोवा* ज्वालामुखियों मे सैकड़ों सहायक शंकु मिलते हैं।**(iv) अम्लीय लावा शंकु**– इसमें लावा अत्यन्त गाढ़ा एवं चिपचिपा होता है, तथा धरातलीय सम्पर्क में आने पर तुरन्त जम जाता है। इस शंकु की आकृति टीलानुमा होती है।**(v) बेसिक लावा शंकु**– में सिलिका की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है एवं लावा का प्रसार अधिक क्षेत्रफल पर होता है, परिणामतः शंकु की ऊंचाई कम होती है।

(ब) नीचे धंसी स्थलाकृतियां– इसके अन्तर्गत अधोलिखितत आकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं।**(i) क्रेटर (Crater)**– ज्वालामुखी विस्फोट द्वारा नीचे धंसा हुआ भाग ही क्रेटर कहलाता है। इसकी आकृति 'कीपाकार' होती है। ढाल के स्वरूप में *क्रेटर* एक दूसरे से भिन्न होते हैं। क्रेटर की दीवालें खड़ी होती हैं। बारम्बार उदगार से क्रेटर का आकार बढ़ता जाता है। इसक सबसे अच्छा उदाहरण *'एटना'* ज्वालामुखी द्वारा निर्मित क्रेटर है जिसका व्यास 300 मीटर एवं गहराई 850 मीटर है।**(ii) कैल्डरा (Caldera)**– यह घाटी की आकृति का एक गड्ढ़ा है, जिसका निर्माण ज्वालामुखी के उत्पत्ति स्थान पर होता है। वस्तुतः लावा भंडार के समाप्त हो जाने पर ही इस आकृति का निर्माण होता है जब उपरी भाग विस्फोट के समय उड़ जाता है। कालान्तर में इस विशाल गर्त में पानी भर जाने पर झील का निर्माण हो जाता है। पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि व्यापक विस्फोट द्वारा मध्य भाग के उड़ जाने से ही *कैल्डरा* का निर्माण होता है। लेकिन ज्वालामुखियों के चर्तुदिक भौमकीय मानचित्रों का विश्लेषण यह निष्कर्ष देता है कि ज्वालामुखी चट्टानों के खिसकाव की भी इसके निर्माण में भूमिका है। कुछ विद्वान केवल चट्टानों के खिसकाव या धसाव के ही कारण *कैल्डरा* की उत्पत्ति मानते हैं। वस्तुतः विस्फोट में केन्द्रीय भाग के उड़ने तथा चट्टानी खिसकाव दोनों के चलते विशाल *कैल्डरा* की उत्पत्ति होती है। जापान में *'बन्दै–सान'* कैल्डरा विश्वका प्रमुख कैल्डरा है जहां 1858 में विस्फोट हुआ था, जिसकी तली का व्यास 2.5 किमी० एवं दीवालों की ऊंचाई 350 मीटर है। जब कैल्डरा के अन्तर्गत पुर्नुदगार हो जाता है, तो अन्दर ही शंकु का निर्माण हो जाता है, एवं लघु कैल्डरा का निर्माण होता है। इसे *'घोसलाकार कैल्डरा'* (Nested Caldera) कहते हैं।

(2) दरारी उदगार द्वारा बनी स्थलाकृतियां– इस तरह के ज्वालामुखी उदगार में लावा का प्रवाह 'दरार' के सहारे होता है। परिणामतः लावा का जमाव व्यापक क्षेत्र में होता है, जिससे लावा

पठार या लावा मैदान का निर्माण होता है। प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी भाग में लावा पठार दरारी उदगार द्वारा ही निर्मित है।

आन्तरिक स्थलाकृतियां– जब ज्वालामुखी उदगार में गैस तथा वाष्प की कमी होती है एवं ऊपरी दबाव अपेक्षाकृत अधिक होता है, तब लावा द्वारा आन्तरिक भागों मे ही विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण होता है, जिनका विवरण अधोलिखित है– (चित्र 8.3)

(चित्र 8.3) ज्वालामुखी द्वारा निर्मित आन्तरिक स्लाकृतियां

(i) बैथोलिथ (Batholith)– पृथ्वी के आन्तरिक भाग में ही जब मोटे रवेयुक्त प्लुटोनिकचट्टान का जमाव वृहद गुम्बद रूप में हो जाय तो, उसे *बैथोलिथ* कहते हैं।इसका विस्तार कम से कम (100वर्गकिमीक्षेत्र पर तथा मैग्मा के 20-30किमी भीतर तक होता है। अपरदन के पश्चात यह उपर दिखाई देने लगता है। इसके किनारे खड़े ढाल वाले होते हैं।**(ii) लैकोलिथ (Laccolith)–** पृथ्वी के आन्तरिक भाग में ही जब लावा का जमाव उन्नतोदरा ढाल वाली आकृति के रूप में हो, तो उसे *लैकोलिथ* कहते हैं।इसमें लावा प्रवाह संस्तर तलों के सहारे होता हैजिसके चलतेऊपरी संस्तर गुम्बदनुमा बन जाता है।ऊटा(संयुक्त राज्य)म *हेनरी माउन्टेन* इसका उदाहरण है। इसकी आकृति बैथोलिथ के विपरीत होती है।**(iii) फैकोलिथ (Phacolith)–** किसी अपनति अथवा अभिनति में लम्बायत लावा भरने से फैकोलिथ आकृति का निर्माण होता है।**(iv) लोपोलिथ (Lopolith)–** जब लावा का जमाव आन्तरिक भाग में नतोदर रूप में हो तो उसे *लोपोलिथ* कहते हैं।इसका मध्य भाग नीचे की ओर लटका दीखता है।

(v) सिल (Sill)– परतदार चट्टानों में लावा के जमाव से इसका निर्माण होता है। यह संस्तरों के समान्तर होती है।**(vi) डाईक–** इस आकृति का जमाव भी 'सिल' की तरह होता है, परन्तु सिल परतदार शैलों में समान्तर होती है, जबकि डाईक लम्बवत रूप में होती है।

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित अन्य आकृतियां– सुप्त ज्वालामुखियों से धूल एवं गैस तथा धुंआ आदि कभी–कभी निकलता रहता है। कभी–कभी भूगर्भिक जल का भी सम्पर्क तप्त पदार्थों से हो जाता है। इन क्रिया–कलापों के चलते गर्म जल स्रोत, धुंधारे आदि का भी निर्माण होता है, जिनका विवरण अधोलिखित है:

(1) गर्म जल स्रोत या गीजर (Geysers)– गर्म जल के प्रवाहित स्रोतों को ही गीजर कहा

जाता है। वस्तुतः Geyser शब्द का हिन्दी अर्थ है 'तेजी से उछलना'। इस आधार पर गीजर का तात्पर्य ऐसे भूगर्भिक छिद्र से है, जिससे गर्म जल निरन्तर प्रवाहित होता है इसे ही 'गर्म जल स्रोत– (Hot Springs) भी कहा जाता है। ये प्राकृतिक फव्वारे होते हैं। ये सर्वाधिक आइसलैण्ड में मिलते हैं।*वारसेस्टर* ने अपनी पुस्तक 'A Text Book of Geomorphology' में लिखा है कि –*''गीजर उष्ण जल के स्रोत होते हैं, जिनसे जल फव्वारे के रूप में निकलता है।''(Geyser are intermittent hot springs that form time to time steam out hot water)*गीजर की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह सर्वमान्य है कि इसकी उत्पत्ति तभी होती है जब भूमिगत जल का सम्पर्क पृथ्वी के आन्तरिक तप्त भाग से हो जाय । ज्वालामुखी वाले क्षेत्र इसके लिए महत्वपूर्ण होते हैं। सभी गीजर समान रूप से सक्रिय नहीं होते। कुछ गीजरों से उष्ण जल का निरन्तर प्रवाह होता है तो कुछ से रूक–रूक कर। इन विशेषताओं के आधार पर ये दो प्रकार के होते है।**(1)** निरन्तर जल प्रवाह वाले **(2)**सविराम प्रवाहयुक्त । इसी तरह गीजरों का वर्गीकरण उनके द्वारा निकलने वाले जल की मात्रा के आधार पर भी होता है। जब बड़े छिद्रों से या कुण्ड से जल का प्रवाह हो तो उसे *कुण्ड गीजर* (Pool type geyser) कहते हैं जबकि छोटे छिद्रों वाले गीजर को *'तंग गीजर'* कहा जाता है।गीजर की सक्रियता के लिए, तापक्रम, जल की उपलब्धि जल एवं ताप में संतुलन आदि का होना आवश्यक है।

(2) धुम्र छिद्र या धुंवारे (Fumeroles)– ज्वालामुखी प्रधान क्षेत्रों में स्थित ऐसे छिद्र जिनसे धुंआ, गैस तथा वाष्प आदि का निकास होता रहता है *धुम्र छिद्र या धुंवारे* कहे जाते हैं। इनका सम्बन्ध ज्वालामुखी से होता है। कभी–कभी ज्वालामुखी उदगार समाप्त हो जाता है, तो उसके केन्द्रीय भाग से वाष्प एवं गैस निकलती रहती है। सामान्यतया यह अनुमान किया जाता है कि उदगार के बाद लावा के ठण्डे हो जाने से ही इसकी उत्पत्ति होती है। जब सक्रिय ज्वालामुखी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तब धुंआरे की की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। धुंवारों का विस्तृत क्षेत्र *अलास्का* है, जहां कई वर्ग किमी० क्षेत्र में इसका विस्तार पाया जाता है। इसी व्यापकता के कारण इस क्षेत्र को *'दस हजारी धुंआ घाटी* कहा जाता है। इस क्षेत्र में धुंवारे एक दरार घाटी के सहारे मिलते हैं।धुंआरे का आर्थिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृतअधिक महत्व है, क्योंकि इसके साथ गन्धक भी निकलती है। उल्लेखनीय है कि कुछ धुंआरे गन्धक विहीन भी होते हैं। जिन धुंआरों से गन्धक निकलती रहती है, उन्हें *'सोल फतारा'* (SOLFATARA)' कहते हैं।

विश्व में ज्वालामुखियों का वितरण– विश्व स्तर पर ज्वालामुखियों के कुछ निश्चित क्षेत्र हैं इनके वितरण के क्षेत्रीय आयाम के आधार पर ज्वालामुखी क्षेत्र एवं भूगर्भिक संरचना में अन्तर्सम्बन्ध सिद्ध किया जाता है। यदि गोलार्द्धों के अनुसार देखा जाय, तो लगभग 2/3 सक्रिय ज्वालामुखी उत्तरी गोलार्ध एवं 1/3 ज्वालामुखी दक्षिणी गोलार्ध में है। ज्वालामुखी केवल स्थलीय ही नहीं अपितु महासागरीय भागों में भी पाये जाते हैं। विश्व स्तर पर ज्वालामुखी के तीन मुख्य क्षेत्र हैं।

(1) प्रशान्त महासागरीय तटवर्ती पेटी– यह पेटी प्रशान्त महासागर में अलास्का से लेकर चीली तक एवं जापान तट के सहारे न्यूजीलैण्ड तक विस्तृत है। विश्व स्तर पर ज्वालामुखियों की संख्या इस क्षेत्र में सर्वाधिक है, परन्तु सक्रिय ज्वालामुखियों की संख्या यहां कम है। कमस्चटका, क्यूराइल द्वीप, फिलीपाइन, द० पूर्वी न्यूगिनी, न्यूजीलैण्ड, अलास्का, मैक्सिको एवं सम्पूर्ण एण्डीज क्षेत्र इसके अन्तर्गत आते हैं जहां ज्वालामुखियों की बहुलता है।**(2) मध्य महाद्वीपीय पेटी–** यह क्षेत्र स्काटलैण्ड से प्रारम्भ होकर भूमध्य सागर होते हुए कमस्चटका पर्वत श्रेणी तक विस्तृत है। इस क्षेत्र में दरारी उदबेधन वाले ज्वालामुखी मिलते है इसकी दूसरी शाखा पूर्वी अफ्रीका में विस्तृत है। एक तीसरी शाखा का प्रसार हिमालय पर्वत के सहारे है जो द० पूर्वी एशिया होते हुए प्रशान्त महासागरीय पेटी से मिलती है। भूमध्य सागरीय क्षेत्र में सक्रिय ज्वालामुखियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है।**(3) अन्ध महासागरीय पेटी–** अन्ध महासागर में मध्यवर्ती कटक के सहारे ये क्षेत्र विस्तृत है, जिसका मुख्य क्षेत्र लघु एंटीलीस से लेकर दक्षिणी एण्टीलीस तक है।

उपरोक्त तीन मुख्य क्षेत्रों के अतिरिक्त कुछ छिटपुट क्षेत्रों में भी ज्वालामुखी मिलते हैं, जैसे अण्टार्कटिका, मारीशस, रीयूनियन द्वीप समूह आदि। जैसा उपर बताया गया है ज्वालामुखी पेटियां अधिकांशतया प्लेटों के रचनात्मक एवं क्षयात्मक किनारों से जुड़ी हैं।